दर्शकः

प्रशान्त घनश्याम - जमुना देसाई

रत्न

४

हरिॐ नमो भगवते श्रीकृष्णाय वासुदेवाय

श्रीवल्लभाचार्यविरचितम्

॥ नवरत्नम्॥

श्रीवल्लभ साहित्यमाला : रत्न - ४

शरणरहस्य

श्लोक पदच्छेद अन्वय
भाषांतर तात्पर्य

दर्शक : प्रशांत घनश्याम-जमुना देसाई

Sharan Rahasya

based on

Navaratnam

of

Pujya Shrï Vallabhāchārya

Written & published by

Prashant Desai

Dipt.me

e-publication

May 11, 2025

मूल्यः सहयोग-सेवा

© Prashant Desai

All Rights Reserved.

Without the prior written permission of the publisher,

This book may not be reproduced or sold in any form.

Email: usha.dipt@gmail.com / Visit at: www.dipt.me

हमने रत्न-३में निवेदनभावका महत्त्व देखा। आचार्यश्रीके अनुसार, कभी तो आत्मनिवेदन करना ही है, तो अभी से निवेदनका प्रयत्न कर! प्रथम थोडा समय, सत्ता या संपत्तिका निवेदन कर, फिर कर्म निवेदन पर आना! तत्पश्चात् मन-बुद्धिका निवेदन होगा! बादमें संसार निवेदन पर आ सकेगा! ये सब योग्य होगा, भगवानको भायेगा तभी आत्मनिवेदनकी बारी आयेगी! और वो आयेगी ही, पर अचानक तो नहीं आयेगी ना? उसके लिये साथमें भक्तिके सोपान चढनें होंगे। श्रवणं कीर्तनं विष्णो... उसके लिये प्रथम समय देना होगा, महापुरुषोंको सुनना होगा, कितने ही प्रयत्न करनें होंगे; सब स्वयं ही करना पडेगा! जीवन परिशुद्ध करना, संबंध- व्यवहारोंमें दक्षता रखनी होगी, अर्थशुचिताका पालन... भगवानके पास जाना आसान तो नहीं है!

तो, भगवानने कही हुई दोषनिवृत्तिकी प्रवृत्ति और आचार्यका निवेदन भाव, यथावत ग्रहण करके जीवनको सफल करेंगे। इन सबका आधार मन है। मनको पसंद आयें तो जीवन पटरी पर चढें! इसलिये मनको नित्य भगवानका अखिलं मधुरं दिखाना चाहिये। कभी तो मान जायेगा! ये घरके लाडले बेटे जैसा है। वो राजकुमारको पसंद आयें.. भायें ऐसा ही सब करना पडता है, और बादमें वो कुछ उलटा-सुलटा कर दें तो परिणाम भुगतना पडे! मनका ऐसा ही है! जैसे उस बेटेको संस्कार देना आवश्यक है वैसे ही, मनको बचपनसे ही सुधारना है।

बाल्यकालसे ही मन ईश्वरकी ओर बढें उसका प्रयत्न होना चाहिये। बालकोंका मन प्रभुकी ओर जायें, उसका ध्यान बडोंको रखना है। उसमें हम वडीलोंका वर्तन महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जैसे कि हमारी मूर्तिपूजा!

मात्र घर घरका खेल जैसी हमारी अर्चापूजा चलती है। समय जानेपर वो भी यांत्रिक होती है; यहाँ विकास कहाँ? इसलिये अर्चना अंदरसे.. मनसे.. मानसी होती है; पूजा मानसी होनेके पश्चात् बाह्य अर्चा रखो या न रखो, मान्य है। मूर्ति रखते हो या छवी रखते हो, कोई अंतर नहीं.. कोई फर्क नहीं पडता!

अर्चा रखना इसलिये आवश्यक है क्योंकि, बच्चें हमारा अनुकरण करतें है। हम क्या कर रहें है उसका बच्चेलोग ध्यान रखतें ही है। उनके मनमें संस्कार पलें उस हेतुसे मूर्ति या छवी रखनी है। हम मूर्ति विना, मात्र ध्यान धरके मानसीपूजा करते रहें तो, हमारे मनमें क्या चलता है वो बालकोंको क्या समझमें

आयेगा? बच्चें मात्र बाह्य व्यवहार देखतें है, इसलिये मानसीपूजाके साथ अर्चापूजा आई होगी, पर कालक्रमसे यांत्रिक मूर्तिपूजा रह गई और मानसीपूजा ही चली गई! बाहरसे अर्चापूजा चलती है और मन अंदर कहीं ओर भटकता है! भटकता हुआ मन व्यवस्थित रीतसे बाह्य पूजा या मानसपूजा कर ही नहीं सकता! आजके बच्चे इसकी भी नोंध लेतें है!

आत्मनिवेदन तो नाम है, वास्तवमें तो मनसे ही सभी होना है! कहा है ना कि मन ही कारण है, बंधन या मोक्षका! इसलिये मन ईश्वरशरण लें तो सब सार्थक!

नवरत्नम्! मुझे ये ग्रंथ सिद्धांत रहस्यका ही भाग लगता है। पहला श्लोक ही निवेदनका अनुसंधान है। इस ग्रंथमें प्रारंभिक विधि नहीं है या नहीं है विषयका प्रतिपादन! जैसे आधेसे ही वातका आरंभ हुआ लगता है। जो भी हो, निवेदन भावके अनुसंधानमें ही समझेंगे तो यह ग्रंथ यथोचित समझ पायेंगे।

यहाँ कुछ शरणके विषयमें सोचेंगे। शरण्य.. शरण देनेवाला, शरणागतको जो देता है वो शरण है। जैसेकि आश्रय, मदद या रक्षण! एक मांगता है और दूसरा देता है, वैसी शरणकी हमारी धारणा है। भगवानके पाससे भी यही अपेक्षा है। किंतु वास्तवमें भगवान या कोई व्यक्ति ही शरण्य हो ऐसा नहीं है। महत्तम भौतिकता ही शरण्य होती है। जैसे कि घर.. निवासस्थान, यह एक शरण है.. आश्रय है; पर अपनी भाषामें नहीं होता कि मैं घरकी शरणमें हूँ। वह शब्दातीत शरण है। उसी तरह मंदिरमें जाकर कहेंगे क्या? भगवान! आपकी शरणमें हूँ, मुझे एक कार चाहिये! यहाँ शरण्य कौन है? भगवान या कार? ये हुआ बोलना कुछ, करना कुछ। बोलतें है भगवानका शरण्य, मांगते है शरण्य कारका!

हमको कोई महापुरुष कहे कि, यह एक स्वयंभू भगवानकी मूर्ति है और यह एक मिलियन डोलर है, आपको कोई एक लेना है। क्या लेंगे? यहाँ प्रश्न पसंदगीका नहीं, शरणागतीका है! हमने किसका शरण लिया! फिर डोलर लेकर हम कितने ही तर्क चलायें कि इससे भगवानकी सो मूर्तियाँ बन जायें, भगवानके कितने ही काम हो जायें, कितने ही दान-पुण्य कर सकें वगैरे... यह सब बातें बेकार है। सत्य तो यह है कि हमने भगवानका शरण नहीं, भौतिकताका शरण लिया! शरण्य डोलर थे पर वो भाषामें आते नहीं है। कहनेका तात्पर्य, बोलनेमें और आचरणमें शरण एक ही.. अद्वितीय होना चाहिये। रहस्य अब देखतें है।

हरे कृष्ण!

१ चिन्ता काप्यकार्यात्मभिर् निवेदिताः कदापीति।
भगवानपि पुष्टिस्थो न कुर्याल्लौकिके गतिम्॥

चिन्ता का अपि अकार्या आत्मभिः निवेदिताः कदा अपि इति
चिंता कोई भी न करनी मनसे समर्पितको कभी भी ऐसे

भगवान् अपि पुष्टिस्थः न कुर्यात् लौकिके गतिम्
भगवान भी पुष्टिमें रहते नहीं करेंगे लौकिकी गति.. स्थिति

आत्मभिः निवेदिताः कदा-अपि का-अपि चिन्ता अकार्या इति।
भगवान् अपि पुष्टिस्थः लौकिके गतिम् न कुर्यात्॥

आत्मासे निवेदन.. समर्पण करनेवालेको कभी भी, कोई भी चिंता (करनी) अकार्य.. अयोग्य है ऐसा (सिद्ध है।) भगवान भी पुष्टिस्थको.. ज्ञानीभक्तको लौकिक.. प्राकृतोंकी गति नहीं देंते, न दें सकेंगे।

तात्पर्य : अन्य निवेदन करते करते एक समय आत्मनिवेदनका भी आयेगा। तब कोई चिंता, शोक या भयको रखना अनुचित होगा.. अयोग्य होगा। निवेदनकारोंको सभी चिंताएँ छोडकर पूर्णरूपसे प्रभुकार्यमें ध्यान रखना है। हमें ध्यान इसलिये रखना है कि अभी भगवानने हमारा आत्मनिवेदन स्वीकार नहीं किया। ऐसी स्थितिको अभी देर है। इसलिये निवेदनके अभ्यासके साथ साथ, चिंताएँ या कोई भी हाय हाय छोडनेका प्रयास हमें करना होगा।

महापुरुषोंका ध्यान मात्र भगवानमें है, उनका चित्त भगवद्रूप हो गया है और इसलिये उनको कोई चिंता नहीं, मोह नहीं, अपेक्षा या आकांक्षा नहीं। उनको कोई कर्म नहीं, कोई ऋण या बंधन नहीं। भगवान उनको इस सृष्टिमें, मात्र हमलोगों पर उपकार करनेको ही रखतें है। जिससे उनके सान्निध्यमें दूसरें अनेक भक्त तैयार हो सकें, कितने ही साधकोंको प्रेरणा मिले व पापीओंका उद्धार हो!

यहाँ आचार्यश्री आश्वासन देते है कि ऐसे साधक भक्तोंकी, भगवान कभी लौकिक गति अर्थात् सामान्य लोंगो जैसी गति नहीं करेंगे। साधक भक्तसे भूल हो तो भी दुर्गति नहीं देते! उसको दंड अवश्य मिलेगा पर विकास नहीं रोकेंगे। उसकी भक्तिमार्गमें प्रगति होगी ही। इसलिये ऐसे महापुरुषोंके सान्निध्यमें रहें और पुष्टि पायें। अब साधकोंको एक विशेष सूचन करते है।

२ निवेदनं तु स्मर्तव्यं सर्वथा तादृशैर्जनैः।
सर्वेश्वरश्च सर्वात्मा निजेच्छातः करिष्यति॥

निवेदनम्	तु	स्मर्तव्यम्	सर्वथा	तादृशैः	जनैः
निवेदनको	परंतु	स्मरण योग्य	सर्व रीते	भगवदीयोंके	मनुष्योंके

सर्वेश्वरः	च	सर्वात्मा	निज-इच्छातः	करिष्यति
सर्वके ईश्वर	और	सर्वके आत्मा	निज.. स्वयंकी इच्छासे	कर सकतें है

तु सर्वथा तादृशैः जनैः निवेदनम् स्मर्तव्यम्। सर्वेश्वरः च सर्वात्मा निज-इच्छातः करिष्यति॥

परंतु सर्व प्रकारसे, तादृश (उन.. ईश्वर जैसे) भगवद्रूप लोगोंके निवेदन.. समर्पण याद रखने योग्य है.. स्मरण करते रहना चाहिये। सर्वलोकके.. सर्व देवोंके ईश्वर और सभीके आत्मरूप.. अंतर्यामी.. श्रीकृष्ण, निज इच्छासे.. उनके निर्धारसे ही करेंगे। (जिसमें सभीका कल्याण होगा।)

तात्पर्य : महापुरुषोंको, आचार्योंको या ऋषियोंको नित्य दृष्टि समक्ष रखनें चाहिये। कारण, उनके जैसे भाव हमारे जीवनमें आयें! महापुरुषोंको निवेदनभाव नित्य स्मरणरूप है, उस भावको भूलना चाहें तो भी वे भूल नहीं पायेंगे। वे तन्मय हो गयें है, इसलिये भगवाननें उनको अपना लियें है। आचार्यश्री कहतें है कि साधकको किसी भी तरहा निवेदनका नित्य स्मरण रखना होगा।

स्मृतिमें नित्य कब और कैसे रहें? कोई तो युक्ति होगी जिससे निवेदनभाव नित्य याद रहें! मेरा सर्वस्व मैंने प्रभुको सोंपा है, उसका निरंतर ध्यान कैसे रखेंगे? उसकी युक्ति आचार्यश्रीने दी है, पर उसे हम अंतमें देखेंगे।

अभी निवेदनके साथ ऐसा शरणभाव रखना है कि अबसे, सबकुछ भगवान देखेंगे और करेंगे। ऐसा दृढ विश्वास रखना होगा। भगवान मुझे अपनायेंगे ही, ऐसी अतूट श्रद्धा रखनी होगी। आचार्यश्री कहतें है, भगवान उनकी इच्छासे सर्व योग्य ही करतें है और करेंगे। और हमें हमारी गठरीका क्या पता है? भगवान जानतें है, वो ही सही निपटायेंगे! महाप्रभुकी तो अनुभूति है कि हरि योग्य समय पर सुयोग्य ही करतें है। हमें मात्र भरोसा रखना है कि 'जो करे हरि करे, हरि रक्षे मम हित! शरण मेरा निवेदन, मैं देखुं उसकी प्रीत!'

३ सर्वेषां प्रभुसम्बन्धो न प्रत्येकमिति स्थितिः।
अतोन्यविनियोगेऽपि चिन्ता का स्वस्य सोऽपि चेत्॥

सर्वेषाम्	प्रभुसम्बन्धः	न	प्रति-एकम्	इति	स्थितिः
सभीका	प्रभु संग संबंध	नहीं	कोई एक साथ	ऐसी	वस्तुस्थिति

अतः	अन्यविनियोगे	अपि	चिन्ता	का	स्वस्य	सः	अपि	चेत्
इसलिये	दूसरोंकी विभक्तिमें	भी	चिंता	क्यों	अपना	वो	भी	जो

(ईश्वरः कदापि) न प्रति-एकम्, सर्वेषाम् प्रभुसम्बन्धः, इति स्थितिः।
अतः अन्यविनियोगे अपि का चिन्ता? चेत् सः अपि स्वस्य!

(ईश्वर कभी भी) किसी एकके नहीं होते.. सभीके है। हरेकका.. सभीका प्रभुके साथ संबंध है.. व्यवहार है (ही), यह स्थिति है.. वास्तविकता है। इसलिये दूसरोंके विनियोगमें.. अन्यकी विभक्तिममें भी चिंता क्यों करनी है? जबकी वो भी मेरा ही है! (पराया नहीं, कारण भगवानका है; भगवान सभीका ध्यान रखतें है इसलिये चिंताका कोई स्थान ही नहीं, दूसरोंकी चिंता नहीं करनी चाहिये।)

तात्पर्यः ये वल्लभाचार्य है! सबकुछ ध्यानमें है! चूँकि आपश्री ऐसी स्थितिसे पारित हुए होंगे, इसलिये हमें कहतें है कि दूसरोंकी चिंता भी रहने दो; न करो। प्रभु तो सबके ही है, सभीसे कोई न कोई व्यवहार है ही! सबकी चिंता उनको करने दो।

भक्त हो या साधक भक्त हो, सहिष्णु तो होगा ही। भक्त अपनी चिंता न करेगा पर स्वभावसे दूसरोंकी चिंता तो अवश्य करेगा। आचार्यश्री जानेंना! वो कोई दुःखी दरिद्रकी चिंता करेगा, तो कोई धनी या आसुरी जीवकी चिंता करेगा कि प्रभुसे विमुख क्यों है? और ऐसी चिंताएँ उसकी साधनामें विक्षेप करेगी।

इसलिये आचार्यश्री कहतें है, क्या भगवानका अन्य जीवोंकी ओर ध्यान नहीं? प्रभुजी सबका बराबर ध्यान रखतें है पर, सबको कुछ भी करनेकी स्वतंत्रता दें रखनेसे, उनकी बाबतोंमें हस्तक्षेप नहीं करेंगे। मात्र देखते रहेंगे! इसलिये किसीकी भी चिंता करे विना, सभीको आत्मीयभावसे.. अपना समझकर, उनको प्रभुके विचार दें, भक्ति समझायें। वे माने तो ठीक है अन्यथा हरि हरि! भगवानको ही सोंपकर आगे बढ, चिंताका कोई कारण नहीं है! यह आचार्यश्रीका मत है।

४ अज्ञानादथवा ज्ञानात् कृतमात्मनिवेदनम्।
यैः कृष्णसात्कृतप्राणैस् तेषां का परिदेवना॥

अज्ञानात्	अथवा	ज्ञानात्	कृतम्	आत्मनिवेदनम्
अज्ञानपूर्वक	अथवा	ज्ञानपूर्वक	करना है	आत्मसमर्पण

यैः	कृष्णसात्	कृतप्राणैः	तेषाम्	का	परिदेवना
जो लोग	कृष्ण आधीन	पूर्णप्राणसे	उनको	कैसी	चिंता.. शोक

अज्ञानात् अथवा ज्ञानात् आत्मनिवेदनम् कृतम्। यैः कृतप्राणैः कृष्णसात्, तेषाम् का परिदेवना?

अज्ञानपूर्वक (प्राकृतिक या मर्यादामार्गमें भी) अथवा ज्ञानपूर्वक (पुष्टिमार्गे) आत्मसमर्पण.. सर्वस्व न्योछावर करना चाहिये। जो लोग (सर्वतः) श्रीकृष्णके आधीन है.. आश्रित है, जिन्होंने संपूर्ण प्राण (भी) न्योछावर कियें है.. श्रीकृष्ण जिनको प्राणप्रीय है, उनको चिंता कैसी.. शोक कैसा?

तात्पर्य : ज्ञानके तीन पद; एक अज्ञान.. कोई जानकारीका न होना, अन्जान! दूजा ज्ञान.. सैद्धांतिक या माहितीज्ञानका होना, शीक्षित! और अंतमें विज्ञान.. अनुभूत ज्ञान, ज्ञानपूर्ण.. सिद्ध! जाचार्यश्री कहतें है, ब्रह्मज्ञान हो के न हो, किसी भी स्थितिमें निवेदन कर सकतें हो। सभी निवेदन करते करते आत्मनिवेदन तक पहोंच सकोगे! कोई विक्षेप नहीं, कोई निषेध नहीं।

अब एक मधुर वात करतें है! कहतें है कि भक्ति करते करते जिन्होंने श्रीकृष्णको आत्मसात किये है, भगवानने भी उसी तरहा, उनको कृष्णसात किये है! धन्य है वें। आचार्यश्री कहतें है, जिन लोगोंने अपने प्राण भी पूर्णरूपसे धर दिये! अब उनके जीवनमें प्राण कौन पूरेगा? स्वयं भगवान ही! 'प्राणप्रीय मुझको वैष्णव वहाले'_नरसिंह। वहाँ अज्ञानी भी ज्ञानी हो जाय! भगवान ही भर्ता!

अब उनको शोक कैसा, मोह कैसा! चिंता क्या, चिंतन क्या? कोई चिंता करनी हो तो भी न कर सकेंगे! ऐसी स्थिति पर आ गयें है, कृष्णसात हो गयें है। इसलिये महाप्रभुजी कहतें है, श्रीकृष्णके विचारोंको.. श्रीकृष्णको आत्मसात करलो, आप भी कृष्णसात हो जाओगे! जीवन कृतकृत्य हो जायेगा। आप ब्रह्मज्ञानी हो तो भी, श्रीकृष्णको पानेका यही मार्ग है, भक्तिपूर्ण आत्मनिवेदन!

५ तथा निवेदने चिन्ता त्याज्या श्रीपुरुषोत्तमे।
विनियोगेऽपि सा त्याज्या समर्थो हि हरिः स्वतः॥

तथा	निवेदने	चिन्ता	त्याज्या	श्रीपुरुषोत्तमे
और	समर्पणमें	चिंता (भी)	छोड देनी है	श्रीकृष्णके चरणोमें

विनियोगे	अपि	सा	त्याज्या	समर्थः	हि	हरिः स्वतः
व्यवहारमें	भी	उसको	त्याग दें	समर्थ	क्योंकि	श्रीकृष्ण स्वयं ही

तथा पुरुषोत्तमे निवेदने चिन्ता त्याज्या। विनियोगे अपि सा त्याज्या, हि हरिः स्वतः समर्थः॥

और पुरुषोत्तम श्रीकृष्णको समर्पित होनेमें.. कृष्णमय होनेमें, (सर्व) चिंताको छोड दें.. त्याग दें। (अंतिम) विनियोगमें भी वो चिंता त्याग दें। क्योंकि श्रीहरि.. श्रीकृष्ण स्वतः समर्थ है.. स्वयं कुछ भी करनेको सर्वशक्तिमान है।

तात्पर्य : कृष्णसात होने पश्चात कोई चिंता रहेगी ही नहीं, फिर भी यदि शेष चिंता हो तो उसे भी उत्तमपुरुषको सोंप दें.. मुक्त रहें। सीधी वात, कोई चिंता नहीं करनी है। यहाँ एक पूर्णस्थितिकी समस्या समझने जैसी है...

भक्त प्रगति करता हुआ आत्मनिवेदनकी स्थिति तक पहोंा है। अब सांसारिक कोई चिंता नहीं, कोई व्यथा नहीं है; फिर भी आत्मनिवेदनके समयमें एक सूक्ष्म चिंता रहती है, वो है मिलनकी चिंता! भगवान मुझे अपनायेंगे या नहीं! मेरी कोई भूल तो नहीं हुई ना? मैने ठीकसे सोंपा है ना! ये अंतिम चिंता भारी है। इसलिये आचार्यजी कहतें है, उसे भी सोंप दें! अपने पास न रख।

निंयोगमें भी चिंता प्रभुको सोंप दे। यहाँ अंतिम विनियोगकी वात है। सर्वस्व सोंप दिया, अब अंतमें क्या रहेगा? उत्तर है, मेरा 'मैं'! वो भी आपको देता हूँ। परंतु उस 'मैं' के विना अब जियेंगे कैसे? व्यवहार कैसे होंगे? ऐसी चिंता भी प्रभुको सोंप दे। कारण उसका रास्ता अब प्रभुको करना है, भक्तको नहीं।

जो भगवानने तेरा 'मैं' स्वीकृत किया तो तू कृष्णसात हो गया! और स्वीकार नहीं किया, संसारमें ही रखा तो भी वो ही ध्यान रखेंगे! चिंताको अवकाश ही नहीं। भगवान स्वयं सर्वसमर्थ है, कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं हरिः। भगवान भक्तको संसारमें रखे उसका कोई कारण तो होगा ही, हमको पता न चलें!

६ लोके स्वास्थ्ये तथा वेदे हरिस्तु न करिष्यति।
पुष्टिमार्गस्थितो यस्मात् साक्षिणो भवताखिलाः॥

लोके	स्वास्थ्ये	तथा	वेदे	हरिः	तु	न	करिष्यति
संसारमें	स्वास्थ्यमें	तथा	विचारोंमें	श्रीहरि	परंतु	नहीं	कर सकते

पुष्टिमार्गस्थितः	यस्मात्	साक्षिणः	भवताः	अखिलाः
पुष्टिमार्गमें स्थित	इसलिये	साक्षिरूपसे	घटनाएँ	समस्त

तु हरिः लोके, स्वास्थ्ये तथा वेदे.. विचारे (किञ्चित्) न करिष्यति।
यस्मात् पुष्टिमार्गस्थितः.. ज्ञानीभक्तः, अखिलाः भवताः साक्षिणः॥

परंतु श्रीहरि, लोकमें.. सांसारिक बाबतोमें, स्वास्थ्यमें.. स्वस्थ रहनेमें तथा वेदमें.. विचारोंमें या विद्या-ज्ञानकी वातोमें (कुछ भी) करेंगे नहीं.. कर सकते नहीं। उसी कारणसे पुष्टिमार्गमें स्थित हुए ज्ञानीभक्तको, समस्त घटनाओंमें.. प्रत्येक व्यवहारमें साक्षीरूपसे (ही रहेना है,) सब देखा करें।

तात्पर्य : भौतिकतामें.. सांसारिक बाबतोंमें प्रभु कुछ नहीं करते, कुछ करेंगे नहीं, क्योंकि इसके लिये जीवके कर्म और स्वभाव ही आधार है। इसलिये जो होता है.. जो मिलता है या जाता है, उनको हरि स्मरण करते हुए देखना है.. पसार करना है। यह भगवदाश्रयकी भावना ज्ञानीभक्तको ही स्थिर रहेती है, वो पुष्टिय है।

हरिः स्वतः समर्थः। भगवानके लिये क्या अशक्य है? वो चाहें तो किसीको भी सिद्धि दें दें। विश्वमें जयजयकार करा दें! जाचार्यश्री कहतें है,भगवान ऐसा करेंगे नहीं। अत्यंत रसप्रद वात करतें है कि, अंतिमपद तक पहोंचे हुए भक्तको भी थोडा अपूर्ण रखेंगे, क्यों? उसका उत्तर कुछ ऐसा है...

कोई शेठ.. जमींदार.. ठाकोर, स्वयं किसी परिचितको अपनी हवेलीमें बुलायें; वो व्यक्ति आयें, शेठ स्वयं ही द्वार खोलें, अभिवादन करें पर भीतर प्रवेश न देते हुए कहे कि चलो बाहर घूमतें है। वो खुद अपना उद्यान बतावें, उसकी हवेलीकी बाह्य भव्यता दिखलावें और फ़र कहे चलो अंदर बैठतें है। तब वो परिचित कितना प्रभावित होगा! कितना प्रसन्न होगा कि शेठने सब स्वयं दिखलाया!

वैसा ही हरि अपने भक्तोंके साथ करतें है। भक्तने प्रभुका बाह्य वैभव देखा ही कहाँ है? ददामि बुद्धियोगं तं... तत्पश्चात ही सच्चा सौंदर्य मान सकेगा!

७ सेवाकृतिर्गुरोराज्ञा बन्धनं वा हरीच्छया।
अतः सेवापरं चित्तं विधाय स्थीयतां सुखम्॥

सेवाकृतिः	गुरोः	आज्ञा	बन्धनम्	वा	हरि-इच्छया
सेवा कर्म	गुरुकी	आज्ञा	ऋणानुबंध	वा	हरिकी इच्छासे

अतः	सेवापरम्	चित्तम्	विधाय	स्थीयताम्	सुखम्
इसलिये	सेवापरायण	चित्त.. मन	धारण करके	स्थित रहेना	सुखपूर्वक

सेवाकृतिः, गुरोः आज्ञा, (ऋणस्य) बन्धनम् वा हरीच्छया। अतः चित्तम् सेवापरम् विधाय, सुखम् स्थीयताम्॥

(कोई भी नियत) सेवाका कार्य.. (मा-बाप या संतानोंकी या सामाजिक सेवाएँ निभाना), गुरुकी आज्ञासे (होते विविध कार्य, ऋणके) बंधनसे.. भाग्यवशात् मिले हुए कार्य अथवा हरिकी ही इच्छा हो ऐसे कार्य (होतें ही है।) इसलिये (प्रभु) सेवामें चित्त परायण रखना चाहिये।.. चित्त हरिको धरकर (और) सुखपूर्वक.. शांतिसे स्थित रहेना है। (मिला हुआ कार्य हरिशरणमें करतें रहें।)

तात्पर्य : शेष जीवनमें अब हरि ही गुरु! और गुरुकी आज्ञापूर्वक रहेना है। वो सांसारिक बंधनोंमें बांधे या ना बांधे, उसकी इच्छा! अब 'संसार सुसरसो रहे, मन मोरी पास!' शांतिसे प्रभुसेवा करते हुए शेष जीवन पूर्ण होगा।

इस समयमें वो महान भक्त, भगवानका असीम प्रेम पायेगा। भगवानके प्रेमका महासागर देखेगा। भगवान उसको ज्ञानकी चोटीपे ले जायेंगे, कहेंगे देख मेरे विश्वको! भक्तको विश्वरूप ही दिखेगा! वो जीवनकी कृतकृत्यता पायेगा। प्रभु उसे गुणातीत करके, उनके गुणोंका वैभव दिखलायें तो गुणोंका मेघधनुष दिखेगा। भावविभोर हो जाय! अंतमें रासलीला होगी, यह द्वैतकी पूर्णाहूति है। इसका वर्णन अशक्य है। आचार्यलोग वर्णन नहीं कर सकते वहाँ हमारा क्या मोल?

दूजा, भगवान द्वैतभाव क्यों रखेंगे? इतना प्रेम और ज्ञान संपादन करके, ऐसे ही अद्वैतमें भक्त आ जायें वो कैसे चलें? वश्वको या दूसरे लोगोंको क्या लाभ मिलेगा? इसलिये इस सृष्टिमें रखतें है। कितने ही साधकोंको, नये भक्तोंको मार्गदर्शन मिलें। कितने ही दुष्टोंका जीवन परिवर्तन हो, प्रभुकी ओर बढें। भक्त द्वारा विश्वमें सात्त्विक परिवर्तन होना चाहिये, सबको पुष्टि मिलनी चाहिये।

८ चित्तोद्वेगं विधायापि हरिर्यद्यत्करिष्यति।
तथैव तस्य लीलेति मत्वा चिन्तां द्रुतं त्यजेत्॥

चित्त-उद्वेगम् विधाय अपि हरिः यत् यत् करिष्यति
चित्तमें उद्वेग धारण हो भी श्रीकृष्ण जो जो करेंगे

तथा एव तस्य लीला इति मत्वा चिन्ताम् द्रुतम् त्यजेत्
और ही उसकी लीला ऐसा मानकर चिंताएँ शीघ्र त्याग दें

(क्वचित्) चित्त उद्वेगम् विधाय (तत्) अपि, यत् यत् (स्थितिः) हरिः करिष्यति तथा तस्य एव लीला इति मत्वा, चिन्ताम् द्रुतम् त्यजेत्॥

(कभी भी) चित्त उद्वेग धारण करें.. मनमें ग्लानी हो जाय तो भी, जो जो (परिस्थिति) हरि.. श्रीकृष्ण करातें है तथा उसकी ही लीला है.. रमत है ऐसा मानकर चिंताको त्वरित.. शीघ्र ही त्याग दें.. छोड दें।

तात्पर्य : अब चिंता कैसी व उद्वेग कैसा? जहाँ हरिइच्छासे ही सब होना है, वहाँ शोक रह सकता है? पर आचार्यकी दृष्टिसे देखेंगे तो, भक्तको वो परिचित जैसा विचार आयें कि, मुझे बहार हवेली तो दिखातें है पर भीतर क्यों नहीं ले जाते? ऐसे भक्तके जल्दीपनमें उद्वेग होगा। इसलिये महाप्रभु कहते है, वहाँ अधिराई न चलें। भगवानकी लीला देखते रहना। वो चाहें वैसा खेलना! उसके मिलनकी भी चिंता त्याग दें.. न करनी चाहिये।

चित्त तू क्यों चिंता करें, कृष्णको करना है वो करें! यह दयारामकी अनुभूति है। नरसिंह कहतें है, भूतल भक्तिपदारथ बडा, ब्रह्मलोकमें नाही रे! भक्त कहें, प्रभु! मात्र आपको भजता रहूँ, जपता रहूँ। आपको रखना है तो रखो, मिलाना है तो मिलादो। तेरा ही शरण, यहाँ भी और वहाँ भी!

महात्मा.. महापुरुष तो उन परमपुरुषमें मिल गयें। हमारा क्या होगा? हमारी यह स्थिति कब? साधकको यहाँ व्यथा होती है। इसलिये आचार्यश्रीने हमारे जैसे साधकोंके लिये, एक अद्भुत युक्ति देकर, उसका निवारण करतें है।

एक सुंदर मार्ग दिखा दिया, 'भक्तिपूर्वक कर्म करता जा, साथमें निवेदन करता जा और दृष्टाभाव धर.. सबका अवलोकन कर! प्रभुकी लीलाका अनुभव लें।' यही है पुष्टिमार्ग! अब एक महान शरणरहस्य समझातें है...

९ तस्मात्सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम।
वदन्निरेव सततं स्थेयमित्येव मे मतिः॥

तस्मात्	सर्वात्मना	नित्यम्	श्रीकृष्णः	शरणम्	मम
इसलिये	सर्वात्मभावसे	नित्य	श्रीकृष्ण	शरणमें	मेरा
वदन्निः	एव	सततम्	स्थेयम्	इति एव	मे मतिः
रटते हुए	ही	सतत.. निरंतर	स्थित रहें	ऐसा ही	मेरा मत है

तस्मात् नित्यम् सर्वात्मना, श्रीकृष्णः मम शरणम् (इति) सततम् एव वदन्निः स्थेयम्। इति एव मे (वल्लभः) मतिः॥

इसलिये नित्य.. नितांत सर्वात्मभावसे.. अखिलभावसे 'श्रीकृष्ण मेरा (सर्वस्व) शरणमें लतें है।' (ऐसा भाव रखकर) सतत.. अविरत वचनमें रखते हुए स्थित रहें। ऐसा निश्चितरूपसे मेरा मत है।

तात्पर्य : विद्वानोंको उस कालमें, अन्य ज्ञानीजनों.. पंडितोंके समक्ष अपना मत रखना होता था। सिद्धांत स्पष्ट करना होता था कि वेदमान्य है कि नहीं। यहाँ आचार्यश्री तो ज्ञानीभक्त थे! कलियुगमें भी लाखोंकी सद्गति हो इस हेतुसे, एक महान.. सर्वोत्तम मत श्रीवल्लभाचार्यने स्थापित किया। वो है 'श्रीकृष्णः शरणं मम।'

इस प्रसिद्ध महान सिद्धांतने, वहाँ सबको मंत्रमुग्ध किया ही होगा; सर्वजनोंने सहर्ष स्वीकार किया होगा। क्योंकि इस मतमें, कर्मठोंको.. कर्मयोगीयोंको कर्म समस्याका कारण मिलता है। साधकोंको.. भक्तोंको भगवानका सामिप्य लगता है, नित्य शरण रहनेका मंत्र लगता है। और सबसे उपयोगी लगता है जिज्ञासुओंको! उनको लगता है, ज्ञान प्राप्तिका सबसे सरल और उत्तम साधन, यह सूत्र है।

कैसे? यह सहज प्रश्न होगा। हरेक मार्गकीदृष्टिसे हम देखेंगे, परंतु पहले शरण शब्दको समझें। शरणका रहस्य जहाँ तक नहीं जानेंगे, तब तक इस मंत्रका कोई अर्थ नहीं है। शरणमें रहेना, ऐसे बहोतसे अर्थमें उपयोग होता है। जैसे कि, निराधारका आधार.. आश्रय। असहायको रक्षण.. परित्राण। अवलंबनके लिये मदद.. पालन-पोषण। पराजितका शरण होना.. स्वार्पण। इसमेंसे एक भी भाव इस श्रीकृष्ण शरणमें नहीं है। इसमें दीन-हीन, हारे-थके या याचक-लाचारका काम ही नहीं है। श्रीकृष्णशरणके लिये कुछ विशेष चाहिये, दिव्यभाव चाहिये!

श्रीकृष्णः शरणं मम, इस मंत्रका प्रथम दृष्टिमें सरल भाषांतर क्या होगा? 'श्रीकृष्ण मेरे शरणमें है।' सचमें! किसीको कहें कि कृष्ण मेरे शरणमें है! तो क्या सोचेंगे? कहेनेवाला पागल या मुर्ख ही लगेगा। कहेंगे, समस्त ब्रह्मांडका नाथ, तेरी शरणमें है? क्या यह शक्य है? ज्ञानी कहेगा, 'उनसे तुम हो या तुमसे वो है!' यदी आप ऐसा कहें कि 'अहं कृष्णस्य शरणं.. मैं कृष्णकी शरणमें हूँ।' या 'कृष्णं शरणं गच्छामि' तो ठीक है समझ सकतें है पर, भगवानने आपका शरण लिया है, ऐसा कहतें हो? भगवानको जानते भी हो या नहीं!

सही वात है! तो आचार्यश्री क्या कहना चाहतें है? अवश्य कोई रहस्य.. गूढ अर्थ होना चाहिये। उसके लिये भक्तिशास्त्र समझना होगा! अन्यथा रहस्य न सुलझें।

भक्त या भक्ति ये भज् धातुके भूतकृदंत शब्द है। भज् सेवायाम् (१.उ) जिसका नित्य सेवन हो, चाहें वो व्यसन हो या विषय हो, भाव हो या संबंध हो; जिसके विना चलें ही नहीं वो सेवन है.. भजन है। अतः सेवा अर्थात संबंधका सेवन!

भक्तिका अर्थ ही है संबंध! हम भगवानको कहतें है, तवास्मि! आपका हूँ! पर कौन हूँ? कौनसे संबंधसे बंधा हूँ? पुत्र हूँ, मित्र हूँ, शिष्य हूँ या दास हूँ! वहाँ प्रेमभावसे प्रिया हो सकतें है और वात्सल्यभावसे माता-पिता भी हो सकतें है। किसी भी संबंधसे प्रभुके साथ जुड सकतें है, प्रभुको कोई आपत्ति नहीं। संबंधसे ही सच्चा शरणभाव प्रगट होगा। इस शरणभावमें विशेषता क्या है? संबंध एकतरफा न होगा, इसलिये शरण भी द्विपक्षीय है। यदि आप पुत्रभावसे उनकी शरणमें, तो वो पिताभावसे आपकी शरणमें! यदि आप यशोदा भावसे तो वो कृष्णभावसे आपका! उनको कोई नानम नहीं है! आप शिष्य तो वो गुरु! मित्र बनों तो वो मित्र, प्रिया हो जाओ तो वो प्रियतम! यदि हम मांगण.. याचक.. भिखारी बनेंगे तो वो दाता होगें पर संबंध क्या? कोई नहीं! जो चाहिये वो दे देंगे, हो गया! इसलिये बंध बनेगा तो वो बंधेगा, अन्यथा उसे कौन बांध सके?

यह आचार्यश्रीका प्रथम हेतु है, प्रथम अर्थ है। 'श्रीकृष्णः शरणं मम.. श्रीकृष्ण मेरी शरणमें है।' यहाँ शरणभाव अर्थात संबंधभाव! श्रीकृष्ण मेरे संबंधमें है, यह अर्थ है। भगवानसे कौनसा संबंध, यह भक्तका गुप्त भाव और आंतरिक व्यवहार है। ये संबंध ही मानसीपूजाका आधार है! उस संबंधका जितना रटन, उतना बंधनका कर्तव्यपालन! जितना प्रबल संबंध उतनी प्रबल आसक्ति और उतना त्वरित सामिप्य! यह है शरणरहस्य!

यह भक्तियोगका दृष्टिकोण है, भक्तोंको इसमें ही आनंद! अब दूसरा अर्थ, कर्मयोगकी दृष्टिसे देखेंगे। कर्मठोंको फलबंधनकी चिंता है! आपने कर्म किया कि कर्ता हुए और कर्ताको फल चिटकेगा ही! इसका निराकरण क्या? आचार्यश्रीने युक्ति कर दी! श्रीकृष्णः शरणं मम। इसमें कर्म क्या है? तो शरणम्.. शरणमें लेतें है। क्या शरण लेतें है? तो उत्तर है, मम.. मेरा (सर्व), कौन लेता है? कर्ता कौन है? उत्तर है, श्रीकृष्ण। यहाँ 'मैं' कर्ता ही नहीं तो फल कहाँसे मिलेगा? कर्मबंधन ही समाप्त! अब जो श्रीकृष्ण कर्ता है तो, आपका 'मैं' क्या करता है? कुछ तो करता होगा न! वहाँ 'मैं' दृष्टा मात्र है। पहले मैं कर्ता था और भगवान दृष्टा थे, अब इस मंत्रसे, भगवान कर्ता है और मैं दृष्टा हूँ। लेता देता हरि है! कर्ता हर्ता भर्ता धर्ता! सर्वसमर्थ स्वामी है! मात्र संबंधपालनसे, मैं यह गतिविधियाँ देखा करता हूँ। यह तन मन बुद्धिधन तू चलाता है, मैं नहीं। युक्तियुक्त ये है कर्मनिवृत्ति!

ज्ञानमार्गीयोंको सरलतम उत्तम उपाय मिला! 'अहं ब्रह्म अस्मि' यह अनुभूति ही जिज्ञासुओंका जीवनलक्ष्य है। उसके लिये ज्ञानमार्गसे कठिन तपश्चर्या करनी पडे, वो अब प्रभूशरणसे सिद्ध होता है। आचार्यश्रीने मार्ग सरल किया! साधकको शरणभावसे मात्र दृष्टा होना है। अवलोकन ही करना है कि उसका र्स्वस्व भगवान शरणमें ले रहें है। 'शरणं मम'का तात्पर्य ही ये है कि भगवान सर्वस्व हर लें, अंतमें अहंकार भी हर लें। शरीरसे सभी कपडें हर लें तो देहका क्या होगा? वैसा जीवका होगा! हरि सर्व हर लें तो अंतमें क्या बचेगा? एकमात्र शुद्ध ब्रह्म तत्त्व! जो अपना वास्तविक स्वरूप है। प्रभु ही भक्तको ब्रह्मस्वरूप कर देंगे। मात्र दृष्टाभावसे शरणपूर्वक रहेना ही है। जीवनकी प्रत्येक घटना अब हरि ही संभाल रहें है, जो मिलें-जायें या अपने साथ जो होय वे सब, प्रभुकी ही लीला है। मुझे प्रामाणिकतासे मात्र संबंध निभाना है। अवश्य उस समयमें प्रारब्ध भुगतना है, प्रभुकी परीक्षाओंसे पास भी होना है, इसलिये साधकको अवश्य दक्ष रहेना है।

अब, श्रीकृष्णः शरणं मम कहो या हरे कृष्ण बोलो, दोनों समान है। कारण, शरणं मम = हरे। हरि सर्व हर लेतें है इससे हरे शब्द आया। यहाँ शरणभावका पूरा ध्यान रखना है। आचार्यश्रीने सिद्धांत समझाने हेतु 'शरणं मम' शब्द दिये है, उसमें भगवानका नाम नहीं है इसलिये, उसके स्थानमें हरे बोल सकतें है; जो भगवानका एक नाम भी है। परंतु यहाँ शरण सिद्धांत स्मरणमें रखना ही है।

हरे कृष्ण!